प्राकृत भाषा : एक अविच्छिन्न धारा

डॉ० कमलेशकुमार जैन

भाषावैज्ञानिकों ने प्राकृत भाषा को भारोपीय परिवार की मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं (५०० ई० पू० से १००० ई० तक) के अन्तर्गत स्वीकार किया है। इस भाषा का अपना विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसके समुचित ज्ञान के अभाव में अन्य किसी प्राचीन अथवा अर्वाचीन भारतीय भाषा के साहित्य का समुचित ज्ञान एवं आनन्द प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

प्राकृत भाषा के उद्‌भव एवं विकास को लेकर विद्वानों में पर्याप्त वैमत्य है। संस्कृत के विद्वान् प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से मानकर संस्कृत की प्राचीनता अथवा श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। प्राकृत भाषा के मूल के विषय में वे प्राकृत-वैयाकरणों द्वारा प्रस्तुत व्युत्पत्तियों को साक्ष्य बनाते हैं। प्राकृत-वैयाकरणों ने प्राकृत की व्युत्पत्ति करते समय प्राकृत का मूल संस्कृत को बतलाया है। आचार्य हेमचन्द्र प्राकृत की व्युत्पत्ति करते हुये लिखते हैं—"प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्"[1] अर्थात् प्रकृति संस्कृत है और उससे उत्पन्न अथवा आयी हुई भाषा प्राकृत है। इसी प्रकार वाग्भटालंकार के एक पद्य[2] की व्याख्या करते हुये सिंहदेवगणि ने लिखा है कि—"प्रकृतेः संस्कृताद् आगतं प्राकृतम्"[3] अर्थात् प्रकृति संस्कृत है और उससे आयी हुई भाषा प्राकृत है। प्राकृत की संस्कृतमूलक उक्त व्युत्पत्तियों का वास्तविक मन्तव्य समझे बिना यह मत व्यक्त किया जाता है कि प्राकृत का मूल संस्कृत है और उसी से प्राकृत भाषा का विकास हुआ है। अतः यहाँ यह विचारणीय है कि प्राकृत का मूल क्या है तथा इस सन्दर्भ में प्राकृत वैयाकरणों की व्युत्पत्तियाँ कहाँ तक तर्कसंगत हैं।

---

१. सिद्धहेमशब्दानुशासन, १/१ वृत्ति।

२. संस्कृतं स्वर्गिणां भाषा शब्दशास्त्रेषु निश्चिता।
प्राकृतं तज्जतत्तुल्यदेश्यादिकमनेकधा ॥
—वाग्भटालंकार (सिंहदेवगणिकृत टीका सहित), हिन्दी टीकाकार—डॉ० सत्यव्रतसिंह, चौखंबा विद्याभवन, चौक, वाराणसी-१, सन् १९५७, २/२।

३. वही, २/२ वृत्ति (सिंहदेवगणिकृत)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत भाषा का अर्थ है—जन साधारण के बोलचाल की भाषा। अतः इस बोलचाल की प्राकृत को देशभाषा कहना अधिक उपयुक्त होगा। सामान्य रूप से विचार करने पर ज्ञात होता है कि प्राकृत भाषा का बोलचाल के रूप में प्रयुक्त प्रथम रूप शुद्ध बोली का रूप था, जिसे हम चाहें तो सुविधा की दृष्टि से प्राकृत बोली भी कह सकते हैं। इसी का विकसित रूप आगे चलकर दो धाराओं में विभक्त दिखाई देता है—प्रथम वह रूप जो प्राकृत बोली से व्याकरण विहीन काव्य रचना में प्रयुक्त हुआ है, और दूसरा रूप वह जो प्राकृत भाषा के तत्कालीन विकसित रूप को दृष्टिगत रखकर प्राकृत-वैयाकरणों द्वारा व्याकरण के कठोर नियमों से जकड़ दिया गया है। यही उत्तरकालीन व्याकरण सम्मत रूप साहित्यिक प्राकृत के रूप में सामने आया। इस उत्तरकाल में जिन प्राकृत-ग्रन्थों की रचना हुई उनका आधार प्राकृत व्याकरण सम्मत था। इस प्रकार की रचनाओं के उदाहरण के रूप में उद्द्योतनसूरि की प्राकृत रचना कुवलयमालाकहा (७७९ ई०) को प्रस्तुत किया जा सकता है। यह साहित्यिक भाषा, व्याकरण के नियमों में बद्ध होने के कारण क्रमशः क्लिष्ट होती गई और उसका वह रूप न रहा जो प्रारम्भ में जन साधारण की बोली के रूप में विकसित हुआ था। अतः इसे एक नवीन नाम साहित्यिक प्राकृत दिया गया। इसे संस्कृत प्राकृत, परिमार्जित प्राकृत अथवा परिष्कृत प्राकृत भी कहा जा सकता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि इस परिष्कृत प्राकृत का प्रयोग काव्य रचना में तो होने लगा, किन्तु जो बोलचाल की भाषा थी, वह व्याकरण के नियमों में बद्ध न हो सकी और वह अपने नित्य नवीन रूप में सतत विकसित होती रही, प्रवहमान होती रही।

प्राकृत भाषा का यह रूप ऋग्वेद काल से भी पूर्व प्रचलित जनबोली का विकसित रूप है, जो अनेक थपेड़ों से गुजरकर अपने इस विकसित रूप को प्राप्त हो सका है। अतः यह सहज ही कहा जा सकता है कि वैदिक संस्कृत और प्राकृत की जननी, वैदिक काल से पूर्व प्रचलित एक जनबोली थी। इसलिये डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने संस्कृत और प्राकृत के मध्य कार्य-कारण अथवा जन्य-जनकभाव को अस्वीकार करते हुये जो दोनों भाषाओं को सहोदरा कहा है[४] वह यथार्थ है।

परवर्ती काल में कुछ विशिष्ट लोगों ने वैदिक संस्कृत को देवभाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की और उसे अपने मूल रूप में सुरक्षित रखने के लिये अनेक ठोस

४. देखिए—प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, तारा पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी, १९६६, पृष्ठ १३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयत्न किये, जिससे वैदिक भाषा आज भी (किञ्चित् परिवर्तन के साथ) अपने मूल रूप में सुरक्षित है। इस वैदिक भाषा के समानान्तर एक जो अन्य भाषा विकसित हुई थी, वह है प्राकृत भाषा। यतः दोनों भाषाओं की जननी एक अन्य पूर्व प्रचलित जनबोली है, अतः उस जनबोली के कुछ शब्द दोनों भाषाओं में आज भी समान रूप से देखे जा सकते हैं। डॉ० रिचर्ड पिशल ने ऐसे अनेक शब्दों का उल्लेख किया है और अन्त में लिखा है कि—"प्राकृत का मूल संस्कृत को बताना सम्भव नहीं है और भ्रमपूर्ण है।"[५] यही कारण है कि प्राकृत भाषा लौकिक संस्कृत की अपेक्षा वैदिक संस्कृत के अधिक निकट है। वैदिक संस्कृत और प्राकृत के शब्दों एवं धातुओं में द्विवचन का अभाव उक्त भाषाओं की समानता की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस प्रसंग में डॉ० पिशल का यह कथन भी मननीय है कि —"प्राकृत भाषा की जड़े जनता की बोलियों के भीतर जमीं हुई हैं और इनके मुख्य तत्त्व आदिकाल में जीती-जागती और बोली जाने वाली भाषा से लिये गये हैं; किन्तु बोलचाल की वे भाषाएँ, जो बाद को साहित्यिक भाषाओं के पद पर चढ़ गईं, संस्कृत की भाँति ही ठोकी-पीटी गईं, ताकि उनका एक सुगठित रूप बन जाय।"[६] इस प्रकार की जो परिष्कृत प्राकृत अथवा साहित्यिक भाषा बन गई, उसका प्रवाह रुक गया, किन्तु बोलचाल की प्राकृत का विकास अवरुद्ध न हो सका। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में बोले जाने के कारण इस भाषा ने अनेक क्षेत्रीय नाम भी धारण किये। भरतमुनि ने क्षेत्रों के आधार पर प्राकृत के सात भेदों का उल्लेख किया है मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, सौरसेनी, अर्धमागधी, बाह्लीका, और दाक्षिणात्या।[७] विविध प्राकृतों के ये नाम भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में बोले जाने का स्पष्ट संकेत करते हैं। इन विविध प्राकृतों का विकास भारतीय आर्य भाषाओं के विकास का इतिहास है। महाकवि रुद्रटकृत काव्यालंकार की टीका

---

५. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, रिचर्ड पिशल, अनुवादक—डॉ० हेमचन्द्र जोशी, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना-३, १९५८, पैरा ६, पृष्ठ ८-९।

६. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पैरा ९, पृष्ठ १४।

७. मागध्यवन्तिजा प्राच्या सूरसेन्यर्धमागधी।
बाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्तभाषाः प्रकीर्तिताः॥

—नाट्यशास्त्रम् (काव्यमाला ४२), सम्पा०—पण्डित केदारनाथ साहित्यभूषण, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, पुनर्मुद्रण १९८३, १७|४८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(वि. सं. ११२५) में श्वेताम्बर जैन विद्वान् नमिसाधु ने एक पद्य[८] की व्याख्या के अन्तर्गत लिखा है—

"प्राकृतेति । सकलजगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचन-व्यापारः प्रकृतिः । तत्र भवं सैव वा प्राकृतम् ।...... प्राक्पूर्वं कृतं प्राकृतं बाल-महिलादिसुबोधं सकलभाषानिबन्धनभूतं वचनमुच्यते । मेघनिर्मुक्तजलमिवैकस्वरूपं तदेव च देशविशेषात्संस्कारकरणाच्च समासादितविशेषं सत्संस्कृताद्युत्तरविभेदानाप्नोति । अतएव शास्त्रकृता प्राकृतमादौ निर्दिष्टं तदनु संस्कृतादीनि । पाणिन्यादि व्याकरणोदित-शब्दलक्षणेन संस्करणात्संस्कृतमुच्यते ।[९]"

अर्थात् संसार के समस्त प्राणियों का व्याकरणादि संस्कार से रहित सहज वचन व्यापार प्रकृति है और उससे होने वाली अथवा वही प्राकृत है । प्राकृत शब्द दो पदों से बना है—प्राक् + कृत । जिसका अर्थ है —पहले किया गया । बालकों और महिलाओं के लिए यह सहज है तथा समस्त भाषाओं का मूल (कारणभूत) है । यह प्राकृत, मेघनिर्गत जल की भाँति पहले एक रूप है, पुनः वही प्राकृत देश अथवा क्षेत्रविशेष और संस्कार विशेष के कारण भेद को प्राप्त करती हुई संस्कृत आदि उत्तर-भेदों को प्राप्त होती है । इसीलिए शास्त्रकार रुद्रट ने पहले प्राकृत का निर्देश किया है और तत्पश्चात् संस्कृत आदि का । पाणिनी आदि व्याकरणों के नियमानुसार संस्कार किये जाने के कारण वही प्राकृत संस्कृत कहलाती है ।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो प्रतीत होता है कि बोलचाल के रूप में प्रयुक्त विभिन्न प्राकृतें ही भारतीय आर्य-भाषाओं के विकास के मूल मे कारण हैं । जो प्राकृतें संस्कृत भाषा की तरह प्राकृत व्याकरण के नियमों में बद्ध हो गईं, वे सीमा में बद्ध जलाशय की तरह स्थिर हो गईं और उनका विकास अवरुद्ध हो गया, किन्तु बोलचाल की प्राकृतें उन्मुक्त भाव से अपनी स्वतंत्र धारा में प्रवाहित होती रहीं; क्योंकि कोई भी व्यक्ति बोलचाल की

---

८. प्राकृत-संस्कृत-मागध-पिशाचभाषाश्च सूरसेनी च ।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः ॥
—काव्यालंकार (रुद्रट), श्री नमिसाधुकृत संस्कृत टीका सहित, प्रका०—मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली—७, संस्करण १९८३, २/१२, पृष्ठ १३ ।

९. वही, २/२, पृष्ठ १३ ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

भाषा की धारा को साहित्यिक भाषा के स्वरूप में बाँधने में न तो समर्थ हुआ है और न होगा। इस तथ्य को एक छोटे से उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है। गंगा की धारा गंगोत्री से प्रारम्भ होकर गंगासागर में विलीन होती है। यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि इस प्राकृतिक रूप से बहने वाली गंगा की धारा को क्या कोई रोक सकता है। अथवा क्या इस निम्नगा धारा के प्रवाह को अवरुद्ध किया जा सकता है? इसका उत्तर नकारात्मक ही होगा। क्योंकि गंगा की धारा को रोकने के लिए कोई कितना ही बड़ा बाँध बना दे, किन्तु धारा या तो उस बाँध को तोड़कर या ऊपर से बहकर आगे बढ़ेगी या अपने पूर्व मार्ग को बदलकर। लेकिन स्वतंत्रतापूर्वक आगे बढ़ेगी अवश्य। यही बात प्राकृत भाषाओं के साथ है।

जब विभिन्न प्राकृतें/देशी भाषाएँ साहित्यारूढ़ होकर प्राकृत व्याकरण सम्मत हो गईं तब प्राकृतों/देशी भाषाओं का प्रवाह तटबन्ध तोड़कर आगे बढ़ गया और वहाँ जो बोलियों का साहित्य के रूप में विकास हुआ, उसे कालान्तर में अपभ्रंश कहा गया। अपभ्रंश भी जब साहित्यारूढ़ हो गई तो उस तटबन्ध को तोड़कर जो जनबोली आगे बढ़ी, उससे जो बोलियाँ विकसित हुईं, वे नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में विकसित हुईं। मगही, जूनी, गुजराती, ढूँढारी, बुन्देलखण्डी, बघेली आदि बोलियाँ भी इसी प्राकृत के विकसित रूप हैं। विभिन्न क्षेत्रों में बोलियों के रूप में जो व्यवहार होता है, उसमें विभिन्न प्राकृतों/अपभ्रंशों के शब्द मूल रूप में अथवा किञ्चित् परिवर्तन के साथ प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होते हैं। तात्पर्य यह कि प्राकृत भाषा एक ऐसी धारा है, जो वैदिक काल के पहले से ही आज तक बहती चली आ रही है। आज भी स्त्रियों एवं बच्चों की बोलचाल की भाषा में इधर को इहर, बाबू को बाऊ, जाओ को जो आदि अनेक रूप दिखेंगे, जो प्राकृत भाषा की धारा के ही अंग हैं। यह बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली भाषा समय-समय पर गंगा की धारा की भाँति अपना आकार-प्रकार बदलती हुई आगे बढ़ी है, बढ़ रही है। अतः प्राकृत भाषा की उत्पत्ति संस्कृत जैसी किसी साहित्यिक भाषा से मानना संगत नहीं है।

प्राकृत को स्वभावसिद्ध प्राचीनकाल से चली आने वाली भाषा मानने पर यह प्रश्न सामने आता है कि आचार्य हेमचन्द्र आदि कुछ प्राकृत वैयाकरण प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से क्यों मानते हैं? इसका समाधान यह है कि प्राकृत-वैयाकरण मूलतः संस्कृत के विद्वान् हैं और उनके समक्ष प्राकृत व्याकरण लिखने के लिए संस्कृत भाषा आधारभूत थी। अतः उन्होंने प्राकृत शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत को प्रकृति मान लिया और जिस प्रकार प्राकृत-वैयाकरणों ने प्राकृत शब्दों का सर्जन करते समय संस्कृत भाषा के शब्दों को आधार बनाया, किन्तु आधार बनाने मात्र से संस्कृत को प्राकृत की जननी मानना तर्कसंगत नहीं है। इसी को स्पष्ट करते हुये डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने लिखा है कि—"प्राकृत भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से नहीं हुई है, किन्तु 'प्रकृतिः संस्कृतम्' का अर्थ है प्राकृत भाषा को सीखने के लिए संस्कृत शब्दों को मूलभूत रखकर उनके साथ उच्चारण भेद के कारण प्राकृत शब्दों का जो साम्य-वैषम्य है उसको दिखाना अर्थात् संस्कृत भाषा के द्वारा प्राकृत भाषा को सीखने का प्रयत्न करना है।"[१०]

प्राकृत भाषा के उपलब्ध सभी व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थ संस्कृत में हैं। एक भी प्राकृत व्याकरण ऐसा नहीं लिखा गया है, जो प्राकृत भाषा में निबद्ध हो। यह भी उक्त कथन की पुष्टि में सहायक है।

निष्कर्ष यह है कि भाषा किसी व्यक्ति, देश अथवा सम्प्रदाय विशेष की नहीं होती है, अपितु जन सामान्य की होती है। अतः प्राकृत की अविच्छिन्न धारा का अध्ययन करने के लिए उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर आगे बढ़ना चाहिये। इससे प्राकृतों का वास्तविक रूप और नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में प्राकृत के योगदान का सम्यक् मूल्यांकन हो सकेगा।

जैन-बौद्धदर्शन विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बाराणसी–२२१००५

१०. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ १३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org